वैदिक ज्ञान परम्परा में सामाजिक समरसता

डॉ. देवेन्द्र कुमार शर्मा

वर्तमान युग में हम वैदिक परम्परा के माध्यम से समाज में एकता एवं समरसता ला सकते हैं, परन्तु आज समाज में इतनी विषमता आ गई है, जिसके कारण समाज में समरसता लाना बहुत मुश्किल हो गया है। परन्तु ऐसा नहीं है। यदि विज्ञान के साथ-साथ व्यक्तियों में कहीं आध्यात्मिक ज्ञान विकसित हो जायें, तो आज समाज से जातिवाद, भ्रष्टाचार, कुरीतियों, व्यभिचार का अन्त हो जाये। यह तभी संभव है, जब हम वैदिक विचारधारा को अपने मानस पटल पर बिठा लें। जब भारतीय वैदिक चिन्तन हम सबके मानस पटल पर विराजमान होगा, तो हम सबको समाज के प्रति सकारात्मक कार्य और सकारात्मक कार्य से हमारे समाज का समुचित विकास होगा। उस समय हमारा समाज अर्थात् सम्पूर्ण विश्व समुदाय का कोई भी व्यक्ति, साथ ही साथ किसी भी प्रकार का जीव भूखा नहीं रहेगा। समस्त चेतन प्राणी को भरपेट भोजन एवं रहने के लिए घर मिलेगा। उस समय हमारी भारत माता की जय होंगी, लेकिन हमारे समाज में नैतिकता का अभाव होने के कारण ही सामाजिक विषमता है जिसके परिणाम स्वरूप भोजन एवं रहने की व्यवस्था कर सकें, क्योंकि हमारा देश जाति, धर्म, सम्प्रदाय विशेषकर भ्रष्टाचार से बोझिल हो गया है, अधिक से अधिक व्यक्ति कर्मों से भाग रहे हैं। जिसके कारण हमारी धरती माँ अपने पुत्र-पुत्रियों सहित बहुत दुःखी है। लेकिन आज हमारा समाज बिखर रहा है क्योंकि समाज में जातिवाद, क्षेत्रवाद, व्यभिचार, अंधविश्वास, कूरीतियाँ विशेषकर इतनी ज्यादा है कि समाज, जाति, धर्म, रूप, रंग के कारण आपस में ही लड़ रहा है। हम सबको चाहिए कि हम सब एक ही भारत माता की संतान हैं तो हमारी समझ से तो हम सबको आपस में जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रूप, रंग, भेद आदि को अपने मानस पटल से निकालकर अपनी भारत माता अर्थात् समुचे समाज की अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तन-मन-धन से सेवा करनी चाहिए। भारतीय वैदिक चिन्तन तो हमें प्रशिक्षण श्रेष्ठ मानव बनाने को तैयार है। मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत दुर्गासप्तसदी में कहा गया है–

या देवी सर्व भूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।[1]

अर्थात् जो देवी सब प्राणियों, संसार के समस्त जातिगत मानव में विद्यमान् है ऐसी माँ भगवती को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। सामाजिक समरसता ऋग्वेद के मंत्रों में भी वर्णित है–

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।[2]

अर्थात् मैं सम्पूर्ण विश्व की स्वामिनी हूँ, धनों को प्राप्त करने वाली हूँ, ज्ञानवती पूजनीयों में प्रमुख हूँ, ऋषि-मुनियों ने मुझे अनेक स्थानों में विभक्त कर विभिन्न रूपों से युक्त नाम दे दिया है। अर्थात् मैं अनेक रूप तथा अनके नाम वाली हूँ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मन सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[3]

अर्थात् हे मानव समाज आप सबकी एक दूसरे के प्रति सच्ची सलाह हो, आपका मन निर्मल हो, आप सबका समान (समाज की भलाई) सोच हो। आप सबका जो समाज रूपी यज्ञ में डालने वाला चिन्तन (कर्म) रूपी हवि है वह भी समान हो।

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवा वहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषा वहै।।

अर्थात् हम दोनों (सतगुरू और सुशिष्य अपने समाज, ज्ञान-विज्ञान आदि की) साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों साथ-साथ पराक्रम (समाज के लिए वीरता पूर्वक कार्य) करें। हम दोनों साथ-साथ अन्न आदि का उपभोग करें। हमारी साधना, ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों (अर्थात् हम सब) आपस में ईर्ष्या द्वेष न करें। अथर्ववेद में भी सामाजिक और पारिवारिक सद्भावना का चिन्तन किया गया है-

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् अमा स्वसारमृत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।[4]

अर्थात् भाई-भाई से द्वेष भावना न रखें। नहीं कोई बहिन-बहिन से द्वेष करे। सभी (यथोचित) आचरण करते हुए, सदाचार व्रत का पालन करते हुए आपस में कल्याणकारी वाणी बोलें। इस मंत्र के संदर्भ, में सन्त कबीर ने भी अपने सच्ची सद्भावना समाज के सामने रखी है- **'ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय। औरन को शीतल करें, आपहु शीतल होय ।।'**[5] ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में भी इस धरा पर रहने वाले मानव को एकता के सूत्र में बाँधते हुए कहा है -

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरूषः।।
पदोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।[6]

अर्थात् यह पुरूष रूपी परमात्मा इतना शक्तिशाली है कि वह अपने तीन चौथाई भाग को ऊपर की ओर उठाये हुए हैं और अपने एक चौथाई भाग अर्थात् पैर में समस्त मानव एवं प्राणी को रहने का स्थान दिया है कहने का भावार्थ उस परमात्मा के पैर में सम्पूर्ण जड़-चेतन प्राणी का वास है। महाकवि तुलसीदास ने भी सम्पूर्ण विश्व समुदाय को सामाजिक एकता के सूत्र में बाँधने का सात्विक

चिन्तन किया है- **'अगर चारि लाख चौरासी, जाति जीव जल थल नथ वासी। सीय राम मय सब जग जानी, करऊ प्रनाम जोरि जुग पानी।।'**[7] अर्थात् चौरासी लाख योनि तथा विभिन्न प्रकार के जल-थल और नभ में रहने वाले जीव (संसार के समस्त मानव और विविध जीव) को राम सीता से युक्त संसार को मानकर इज्जत के साथ प्रणाम करता हूँ। अर्थात् समस्त जगत के जड़-चेतन प्राणी में परमात्मा का निवास है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति (मानव) और जीव बिना परमात्मा के चल-फिर नहीं सकता। ईशावास्योपनिषद् में भी सामाजिक समरसता का बड़ी सहजता के साथ वर्णन है -

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[8]

अर्थात् जब समस्त प्राणी (मानव और जीव) परमात्मा से युक्त है और समस्त प्राणियों (मानव और जीव) में परमात्मा है, तब मानव की एक दूसरे प्राणियों (संसार का चाहे जिस जाति धर्म का व्यक्ति तथा चाहे जिस प्रकार का जीव हो) से घृणा नहीं करना चाहिए।

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मा एव अनुपश्यति।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।[9]

अर्थात् जो व्यक्ति समस्त प्राणी (संसार का चाहे जिस जाति धर्म का व्यक्ति तथा चाहे जिस प्रकार का जीव) में परमात्मा को ही देखता है। ऐसे समस्त प्राणी में मात्र एक ही परमात्मा को देखने वाले महापुरूष को कौन सा शोक और मोह? अर्थात् संसार के समस्त मानव और जीवन में परमात्मा को देखने वाला महापुरूष के अन्दर मोह, शोक नहीं रह जाता।

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ।।[10]

अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी जड़-चेतन प्राणी (पेड़-पौधे, नदी, पहाड़, विभिन्न जाति के मानव और जीव) है वह सब परमेश्वर से युक्त है अर्थात् संसार के प्रत्येक जीव एवं मानव में परमात्मा का वास है। इसलिए हे मानव! (जो आपको घर, द्वार, जमीन, पुत्र, परिवार, आदि मिला है) यह मत समझो कि यह सब हमारा है बल्कि यह हम सबका अर्थात् परमात्मा का है, इसलिए त्याग करते हुए उपयोग करो, यह धन-दौलत किसी का नहीं है। महाकवि कालिदास भी पूरे विश्व को सामाजिक एकता के सूत्र में बांधते हुए कहते हैं–

वागर्थाविव सम्प्रक्तौवागर्थ प्रतिपतयै।
जगत' पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[11]

अर्थात जिस प्रकार शब्द और अर्थ आपस में मिले हुए हैं ठीक उसी प्रकार शब्द और अर्थ

की भांति प्रतीत होने वाले जगत् के माता-पिता, शंकर और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ। कहने का भाव यह है कि भले ही शब्द और अर्थ बाह्यरूप से अलग-अलग है लेकिन आन्तरिक रूप से शब्द और अर्थ एक ही है। ठीक इसी प्रकार शंकर और पार्वती भी ही बाह्यरूप से अलग-अलग प्रतीत हो रहे हैं परन्तु आन्तरिक दृष्टिकोण से ये दोनों एक हैं। इसी प्रकार हम सब भले ही बाह्यरूप में अनेक हैं लेकिन आन्तरिक दृष्टिकोण से हम सब एक ही परमात्मा के पुत्र-पुत्री हैं। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है -

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।[12]

अर्थात् जो लोग विद्या (भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अंधविश्वास, जातिवाद आदि में लिप्त) की उपासना करते हैं, वे अज्ञान स्वरूप होकर संसार में भटकते रहते हैं और जो लोग ज्ञान को पाकर भी अपने आपको ज्ञानी, विद्वान् मानकर अहंकारी होकर (समाज में ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा आदि को मानने वाला) वह उससे (अज्ञानी से ज्यादा अर्थात् महामूर्ख) भी ज्यादा अज्ञान रूपी अंधकार में प्रवेश करता है। इस प्रकार जब धरा, आकाश, सूर्य और चन्द्रमा एक है तो समझो वह परमात्मा भी एक है। इसलिए हम सब भी एक हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि वैदिक परम्परा में प्रबल सामाजिक एकता एवं समरसता की भावना निहित है।

संदर्भ ग्रंथसूची –

1. ऋग्वेद संहिता - प्रो. उमाशंकर शर्मा
2. ऋषि अथर्ववेद संहिता - पं. रामस्वरूप
3. ईशावास्योपनिषद् - प्रो. उमाशंकर शर्मा, आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
4. श्रीमद्भगवत्गीता - आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
5. कठोपनिषद् - डॉ. सुरेन्द्र
6. कठोपनिषद् - डॉ. पुष्पा गुप्ता
7. दुर्गासप्तशती - डॉ. रामचन्द्र झा
8. वैदिक साहित्य का इतिहास - डॉ. पारसनाथ

प्रकाशन - चौखम्भा साहित्य प्रकाशन, वाराणसी

संदर्भ संकेत–

1. दुर्गासप्तशती 5/43 श्लोक
2. ऋग्वेद 10/125/3

3. ऋग्वेद 10/191/13
4. अथर्ववेद
5. कबीर ग्रन्थावली
6. ऋग्वेद 10/10/3
7. तुल. बालकाण्ड
8. ईशवास्योपनिषद् 06
9. ईशा. 7
10 ईशा. 01
11 रघुवंश 2/1
12 ईशावास्योपनिषद 09

(प्राचार्य) श्री रामजीलाल स्मृति शिक्षा महाविद्यालय, पंवालिया,
सांगानेर, जयपुर (राज)